श्रद्धा और समर्पण से मिलता है, गुरु का आशीर्वाद

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा.

जो शिष्य गुरु के प्रति पूर्ण निष्ठा से श्रद्धा-समर्पित रहता है, उसे गुरु रहस्यात्मक ज्ञान भी सहज ही प्रदान करने को तत्पर हो जाते हैं। गुरु किस प्रकार शिष्य का कल्याण करने को तत्पर रहते हैं, इसे आचार्यश्री के इस आलेख से जाना जा सकता है। **-सम्पादक**

सद्गुरु की महिमा

वशिष्ठ ऋषि जी ने कहा है-

"गुरूपदेशेन विना नात्मतत्त्वागमो भवेत्।" -योगवाशिष्ठ

आत्मा में अनन्त ज्ञान है, अनन्त शक्तियाँ हैं, परन्तु इस ज्ञान और शक्ति को जागृत करने का मार्ग कौन बतायेगा?

उत्तर है- गुरु!

भवन पर ताला लगा है। चाबी भी आपके हाथ में है, किन्तु चाबी घुमाने का ज्ञान भी तो होना चाहिए। सीधी चाबी घुमाने से ताला खुल जाता है, तो वही चाबी उल्टी घुमाने से ताला बन्द हो जाता है। चाबी घुमाने की कला गुरु से ही प्राप्त होती है।

जैनाचार्यों ने कहा है-

"मेढी आलंबणं खंभं दिट्ठी जाणं सुउत्तमे।
सूरि जे होइ गच्छस्स तम्हा तं तु परिक्खए।।"

-गच्छाचार, प्रकीर्णक 8

जैसे खेत-खलिहान में बैल घूमता है तो बीच में उसके एक लकड़ी का खम्भा बना होता है, जिसके सहारे बैल घूमता है, उसे 'मेढी' कहते हैं। गुरु जीवनरूपी खलिहान की मेढी है। गुरु आलम्बन है, सहारा है। वृक्ष के आश्रय या आलम्बन से लताएँ ऊपर चढ़ती हैं। इसी प्रकार गुरु का आलम्बन पाकर शिष्य साधना रूपी वृक्ष पर चढ़ता है। भवन या महल का आधार उसका स्तम्भ है। खम्भे या 'पिलर' हैं। स्तम्भ के सहारे दस-बीस मंजिल की बिल्डिंग खड़ी हो सकती है। गुरु साधनारूपी महल के 'पिलर' या स्तम्भ हैं। गुरु साधना की दिव्य दृष्टि देते हैं। चलने वालों के पास यदि दृष्टि है, आँखें खुली हैं तो वह अपनी मंजिल को पा लेगा। रास्ता

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भी देखता चलेगा ताकि कहीं भटके नहीं, अटके नहीं।

गुरु निश्छिद्र यान है- नाव से नदी पार की जाती है, परन्तु नाव में ही यदि छेद है तो नाव स्वयं भी डूबेगी और यात्रा करने वालों को भी डुबो देगी। निश्छिद्र नाव ही पार पहुँचाती है, गुरु इस जीवन समुद्र में पार पहुँचाने वाली नाव हैं।

जिस प्रकार इन चीजों की उपयोगिता भौतिक जगत् में है उसी प्रकार अध्यात्म जगत् में गुरु की आवश्यकता और उपयोगिता है।

रोगी डॉक्टर या वैद्य के पास जाता है तो चिकित्सक उसको नीरोग एवं स्वस्थ बनाने का उपाय बताता है। छात्र अध्यापक के पास जाता है तो अध्यापक छात्र को अक्षर ज्ञान से लेकर अनेक प्रकार के शास्त्रों तक का ज्ञान देकर विद्वान् या योग्य बनाने की भावना रखता है। गार्ड के हाथ में गाड़ी के संचालन की जिम्मेदारी आती है तो वह गाड़ी को सकुशल अपने गंतव्य स्थान तक पहुँचाने की चेष्टा करता है। इसी प्रकार गुरु हमेशा ही शिष्य का कल्याण चाहता है। शिष्य की आचार-शुद्धि एवं विचार-शुद्धि करके उसे जीवन में श्रेष्ठ मानव बनाना गुरु का लक्ष्य रहता है।

रोगी यदि यह सोचे कि मैं चिकित्सक के पास न जाकर स्वयं ही अपनी चिकित्सा करूँ? तो इसमें बड़ा खतरा रहता है। उसे अनुभवी कुशल चिकित्सक की शरण लेनी ही पड़ती है। छात्र अध्यापक की सहायता के बिना स्वयं ही गणित, शिल्प, साहित्य, सर्जरी आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो यह सम्भव नहीं। उसे अपना ज्ञान बढ़ाने और विषय को गहराई से समझने के लिए कुशल प्राध्यापक की जरूरत रहती है। इस प्रकार व्यावहारिक जीवन में भी हमें पद-पद पर दूसरों के सहयोग, मार्गदर्शन और अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। अपनी त्रुटि, अपूर्णता और अक्षमता का ज्ञान हम स्वयं नहीं कर सकते, दूसरे अनुभवी ही हमें इस भूल का ज्ञान कराते हैं। अपना मुँह अपनी आँखों से नहीं दिखाई देता, उसके लिए दर्पण की जरूरत पड़ती है। यही स्थिति हमारे आध्यात्मिक जगत् में भी है। अपने दोष-दुर्गुणों को देखने, अपनी आत्म-शक्ति का अनुभव करने और उनका परिष्कार व संस्कार करने के लिए गुरु की आवश्यकता रहती है। गुरु का अर्थ ही है जिसने स्वयं अपनी आत्मा का परिष्कार किया है। अपनी शक्तियों को जगाया है, अपने परिश्रम, तपस्या, साधना और ज्ञान के बल पर अपने आत्म-बल से स्वयं के भीतर छुपी शक्तियों को जगाया है, इस साधना पथ में आने वाली कठिनाइयों का अनुभव किया है और उनका समाधान भी पाया है। वह मंजिल का द्रष्टा और मार्ग का अनुभवी व्यक्ति ही दूसरों को समाधान देने में समर्थ होता है। उपनिषद् में कहा गया है-

"गुरूपदेशतो ज्ञेयं न च शास्त्रार्थकोटिभिः।"

आत्म-विद्या का ज्ञान गुरु से ही सीखा जा सकता है, केवल करोड़ों शास्त्र पढ़ने से वह ज्ञान नहीं मिलता।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर माली की तरह गुरु संस्कार और परिष्कार देते हैं

बगीचे में तरह-तरह के पेड़-पौधे, झाड़ियाँ, खरपतवार उगती हैं और उनसे बगीचे के सुन्दर पौधों का विकास रुक जाता है। चतुर माली उन झाड़-झंखाड़ को उखाड़कर साफ करता है। पेड़-पौधों की कटाई-छँटाई करके उनके विकास को रोकने वाले तत्त्वों को हटाकर सुन्दर उपयोगी पौधों से विकास का अवसर देता है।

मनुष्य का मन भी एक बगीचा है। इसमें दुर्विचारों की, वासना और विकारों की कँटीली झाड़ियाँ, खरपतवार उगता रहता है और वे सद्विचारों और सद्संस्कारों के पौधों का विकास रोक देते हैं। उनका रस, जीवन तत्त्व स्वयं चूसकर उन्हें कमजोर और क्षीण बना देते हैं। गुरुरूपी माली ज्ञान की, उपदेश की कैंची और कुल्हाड़ी लेकर उन कुविचार रूप झाड़-झंखाड़ को उखाड़कर बाहर फेंकते हैं, उसे प्रोत्साहन की खाद-पानी देकर शक्ति देते हैं और सुविचारों के सुसंस्कार से सद्गुणों के पौधों से जीवनरूपी उद्यान को हरा-भरा सुन्दर-मनोरम बनाते रहते हैं।

गुरु अपने अनुभव, दूरदर्शिता, चतुरता और बुद्धिमत्ता के बल पर शिष्य के जीवन उद्यान में, उसके मस्तिष्क में, सद्विचारों के बीज बोता रहता है।

कुम्भार की तरह शिष्य को पात्र बनाता है गुरु

भारतीय साहित्य में गुरु को कुम्भार की उपमा दी गई है। कुम्भार का काम बहुत बड़ा, योग्यता व दायित्व भरा है। वह बेडौल कुरूप मिट्टी को सुन्दर घट, कलश, कुण्ड, दीपक आदि पात्रों का आकार देता है। जिस मिट्टी में गिरकर जल सूख जाता है उसी मिट्टी को पकाकर ऐसा पात्र बना देता है कि वह पानी को, दूध को, घी को अपने में धारण करके रख लेता है। जल को सोख लेने वाली मिट्टी ही जल धारण करने में समर्थ बनती है।

गुरु के सामने अनघड़ बेडौल आकार का मानव आता है। गुरु उसे ज्ञान, संस्कार, शिक्षा, सद्बोध और जीने की कला सिखाकर ऐसा पात्र बना देता है कि वह संसार के सभी श्रेष्ठ गुणों को धारण करने में समर्थ हो जाता है। जीवन का रस सोखने वाले तत्त्व भी उसके लिए पोषक बन जाते हैं। तपस्या, साधना, ज्ञान के बल पर वह एक योग्य व्यक्तित्व बनकर समाज में प्रतिष्ठा और आदर प्राप्त करता है।

इस प्रकार गुरु का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व है शिष्य के प्रति, गुरु अपने दायित्व को पूर्ण करता है। निष्काम भावना से, निःस्वार्थ भावना से, उसके मन में शिष्य से प्राप्ति की भावना या लोभ नहीं रहता। यदि गुरु शिष्य से कुछ पाने की आशा से, अपेक्षा रखकर ज्ञान देता है तो वह गुरु नहीं कहला सकता, वह वेतनभोगी शिक्षक भले ही कहलाये। गुरु का पद शिक्षक से बहुत ऊँचा है। गुरु शिष्य का मार्गदर्शक है। वह शिष्य को अपने समान और अपने से भी महान् बनाना चाहता है। जिस प्रकार पत्थर को तरासकर सुन्दर देव-प्रतिमा बनाने वाला शिल्पकार एक दिन उस मूर्ति को अपने से भी अधिक मान-सम्मान पाने योग्य बना देता है। स्वयं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तो शिल्पकार ही रहता है, किन्तु मूर्ति को भगवान बना देता है। गुरु ऐसा ही महान् शिल्पी है जो निष्काम भाव के साथ शिष्यरूपी पत्थर को भगवान की प्रतिष्ठा दिलाने में ही अपना कर्त्तव्य समझता है।

शिष्य सदा शिष्य ही बना रहे

जैन सूत्रों में कहा गया है कि गुरु तो महान् है ही, परन्तु शिष्य को भी उन महान् गुरु के प्रति सदा विनय और श्रद्धा का भाव रखना चाहिए। शिष्य में श्रद्धा होगी, समर्पण की भावना होगी, विनय और उपकार के प्रति कृतज्ञता की भावना होगी तभी वह गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त कर सकता है। इसलिए यदि शिष्य केवलज्ञानी बन जाये और गुरु छद्मस्थ ही रहे तब भी शिष्य अनन्त ज्ञान ऐश्वर्य प्राप्त करके भी ज्ञानदान देने वाले गुरुओं के प्रति सदा विनयशील और भक्तिमान बना रहे। वास्तव में शिष्य की भक्ति, समर्पण भावना और श्रद्धा ही गुरु को ज्ञानदान के लिए प्रेरित करती है। कहा गया है, गुरु तो गाय है, ज्ञान रूप दूध देने में समर्थ है, परन्तु दूध दुहने वाला ग्वाला है शिष्य। यदि शिष्य में गुरुओं के प्रति विनय, समर्पण, श्रद्धा और आदर भावना है तो उनके ज्ञान व आशीर्वाद का दूध शिष्य को स्वतः ही प्राप्त हो जायेगा। योग्य शिष्य ही गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त कर सकता है। यदि शिष्य में पात्रता नहीं है तो गुरुजनों का आशीर्वाद उसे प्राप्त नहीं हो सकता।

विनय से मिलता है दुर्लभ रहस्यों का ज्ञान

महाभारत का एक सुन्दर प्रसंग है। महाभारत का युद्ध घोषित हो चुका था। कुरुक्षेत्र में एक ओर पाण्डव सेना और दूसरी ओर कौरव सेना आकर डट गई। पाण्डव सेना में पाँचों महाबली पाण्डव थे और उनके साथ थे वासुदेव कृष्ण। किन्तु कौरव सेना बड़ी विशाल थी। युग के बड़े-बड़े महारथी, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, कर्ण जैसे अजेय योद्धा सभी किसी न किसी कारण से विवश होकर कौरव सेना के साथ थे। सभी दुर्योधन के पक्ष में लड़ने को युद्ध-भूमि में आ गये थे। उस समय धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ युद्ध के लिए सज्जित होकर युद्ध-भूमि में आते हैं। सामने भीष्म पितामह आदि कुल श्रेष्ठ योद्धाओं को देखकर वे अपने शस्त्र आदि रथ में ही रखकर नीचे उतरते हैं, अकेले दुर्योधन की सेना की तरफ चल पड़ते हैं। यह देखकर भीम-अर्जुन घबराये-"भैया यह क्या कर रहे हैं? यह युद्ध-भूमि है यहाँ शत्रुपक्ष में अकेले शस्त्रहीन होकर जाना कितना खतरनाक है, इतनी बड़ी भूल कैसे कर रहे हैं?" अर्जुन एवं भीम, श्रीकृष्ण से कहते हैं-"आप धर्मराज को शत्रु-सेना के सामने अकेले जाने से रोकिए! कहीं अनर्थ न हो जाए।"

श्रीकृष्ण कहते हैं-"धर्मराज स्वयं धर्म के ज्ञाता हैं। नीति के ज्ञाता हैं। जो भी कर रहे हैं वह अनुचित नहीं होगा। ठहरो, देखो और प्रतीक्षा करो।"

कौरव सेना भी धर्मराज को अकेले आते देखकर आपस में घुसुर-फुसुर करती है, अवश्य ही विशाल कौरव सेना को देखकर युधिष्ठिर घबरा गये और क्षमा माँगने या युद्ध में पराजय स्वीकारने के लिए आने लगे। धर्मराज का अकेला आना चारों तरफ चर्चा का विषय बन गया और सब देखने लगे-"अब क्या कहना चाहते हैं?"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तभी धर्मराज भीष्म पितामह के पास आकर प्रणाम करते हैं और कहते हैं–''पूज्य पितामह! आपके सामने शस्त्र उठाने का अवसर आ गया है। यह मेरे मन को बहुत ही अप्रिय लगा है, क्या करूँ? विवश हूँ। अब आप हमें युद्ध करने की आज्ञा प्रदान कीजिए।''

युधिष्ठिर की विनम्रता से भीष्म पितामह गद्गद हो गये। बोले–''धर्मराज! तुम वास्तव में ही धर्मराज हो! तुमने हमारी गौरवमयी परम्परा को अक्षुण्ण रखा है, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। यदि तुम इस प्रकार नम्रतापूर्वक मुझसे युद्ध की अनुमति लेने नहीं आते तो मैं अवश्य ही तुम्हारी पराजय की कामना करता, परन्तु तुम्हारी नम्रता और धर्मशीलता ने मुझे विवश कर दिया, मैं तुम्हें विजयी होने का आशीर्वाद देता हूँ। मैं दुर्योधन का पाप का अन्न खाने से अधर्म का साथ देने पर मजबूर हूँ, अब तुम इस बात को छोड़कर मुझसे अन्य कोई सहायता माँग सकते हो।''

युधिष्ठिर कहते हैं–''पूज्य पितामह! आपसे युद्ध करके हम किस प्रकार विजयी बन सकते हैं, यदि नहीं तो फिर आपका यह आशीर्वाद कैसे सफल हो सकता है?''

भीष्म ने कहा–''धर्म-पुत्र! इस युद्ध में विजय तुम्हारी होगी, यह मेरा आशीर्वाद है। रहा प्रश्न मुझे परास्त करने का, इसका रहस्य भी समय आने पर मैं तुम्हें अवश्य बता दूँगा।''

युधिष्ठिर वहाँ से द्रोणाचार्य के पास आये और दण्डवत् प्रणाम करके बोले–''गुरुदेव! विवश होकर हमें आपसे युद्ध करना पड़ रहा है, आप हमें युद्ध की आज्ञा दीजिये और आशीर्वाद भी।''

द्रोणाचार्य ने भी अपनी विवशता बताते हुए कहा–''विजयी भव।''

युधिष्ठिर बोले–''गुरुदेव! आपके होते हुए हम इस युद्ध में विजयी कैसे हो सकते हैं? फिर आपका आशीर्वाद कैसे सार्थक होगा?''

द्रोणाचार्य ने कहा–''यह सत्य है कि मेरे हाथ में अस्त्र-शस्त्र रहते हुए मुझे कोई मार नहीं सकता.....किन्तु फिर भी मैंने तुमको विजयश्री का आशीर्वाद दे दिया है और एक स्थिति ऐसी आयेगी तब तुम शस्त्र चलाकर मुझे मार दोगे।''

द्रोणाचार्य ने भी युधिष्ठिर को अपनी मृत्यु का रहस्य बता दिया। इसी प्रकार कृपाचार्य और शल्यराज जो युधिष्ठिर के मामा भी थे और महारथी कर्ण के सारथी भी, उनसे भी युद्ध की आज्ञा और विजय का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। कृपाचार्य ने भी अपनी मृत्यु का रहस्य युधिष्ठिर को बता दिया और कहा–''मैं प्रतिदिन भगवान से तुम्हारी विजय के लिए प्रार्थना करता रहूँगा।''

शल्य ने भी धर्मपुत्र को वचन दिया कि मैं वचन मैं बँधा होने से दुर्योधन के पक्ष में लडूँगा, किन्तु मैं तुम्हारी विजय के लिए कर्ण को हतोत्साहित करता रहूँगा। फलस्वरूप वह साहसहीन होकर स्वयं ही तुम्हारी विजय की बाधा को दूर कर देगा।

इस प्रकार गुरुजनों को प्रणाम करके युधिष्ठिर ने अपनी नम्रता से ही महाभारत का आधा युद्ध जीत

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लिया। जितने अजेय महारथी थे सबकी मृत्यु का रहस्य प्राप्त कर लिया तो विजय की बाधाएँ अपने आप दूर हो गयीं।

महाभारत का यह प्रसंग गुरुजनों से आशीर्वाद और अज्ञेय रहस्य प्राप्त करने का रहस्य खोलता है कि शिष्य की नम्रता और श्रद्धा भावना पर प्रसन्न होकर गुरु उसे ज्ञान का गूढ़तम रहस्य बता देते हैं। यहाँ तक कि अपनी मृत्यु का रहस्य भी बता देते हैं।

गुरु-शिष्य में एक अनूठा समर्पण व स्नेह का भाव होता है- विश्वास और निष्ठा का एक सूत्र जुड़ा होता है, जो गुरु को विवश कर देता है शिष्य को सब कुछ सौंप देने के लिए। जैसे एक विशाल सरोवर सदा जल से भरा रहता है। जब छोटे तालाब को एक नाली के द्वारा उस विशाल सरोवर से जोड़ दिया जाता है तो वह छोटा-सा तालाब भी पानी का अक्षय भण्डार बन जाता है और जब तक बड़े सरोवर में पानी रहता है, छोटा तालाब भी नहीं सूखता। जैसे बिजलीघर (पावर हाउस) से घर की बिजली का कनेक्शन हो जाता है तो पावर हाउस की बिजली घर को, मिल को, कारखानों को बराबर मिलती है। प्रकाश और ऊर्जा का सम्बन्ध जुड़ा रहता है। बिजलीघर बराबर अपनी बिजली सप्लाई करता रहता है।

गुरु भी महासरोवर और बिजलीघर की भाँति शिष्य की आत्मा के साथ आत्मा का सम्बन्ध जुड़ जाने पर अपनी शक्ति, अपना ज्ञान, अपनी साधना का रहस्य सब कुछ शिष्य को प्रदान कर देता है। आवश्यकता है गुरुजनों का विनय करके, उनके प्रति एकनिष्ठ समर्पण करके उनसे सद्बोध प्राप्त किया जाये। समर्पण के बिना प्राप्ति नहीं होती। विनय के बिना विद्या नहीं मिलती। इसलिए गुरु-शिष्य के सम्बन्धों में सदा ही विनय, श्रद्धा, समर्पण और सदिच्छा का सूत्र जुड़ा रहना चाहिए। तभी गुरु शिष्य को अपना ज्ञान और अपनी शक्ति देकर उसे अपने से भी महान् बनाने में सब कुछ लुटा देते हैं।

-''अमृत-पुरुष' ग्रन्थ सन्-2002 से संकलित

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org